International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
E-ISSN: 2455-2070
Received: 28-09-2026, Accepted: 28-10-2026, Published: 12-11-2026
Volume 12, Issue 4, 2026, Page No. 156-158

प्राचीन भारत में विभिन्न कलाओं के विकास का अध्ययन

डॉ. गुरविंदर कौर
सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग, गुरु नानक गर्ल्स कॉलेज संतपुरा, यमुनानगर, हरियाणा, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhssr.2026.12.4.12376

सारांश
प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य प्राचीन भारत के दौरान विभिन्न कलाओं के विकास का अध्ययन करना है। प्राचीन कालीन भारतीय कला ने विकास के चरम शिखर को प्राप्त किया।कला का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था जिसका विकास न हुआ हो। भारतीय कलाकारों की योग्यता, कुशलता और उनका तकनीकी ज्ञान विभिन्न कलाकृतियों के माध्यम से प्रदर्शित होता है। इसके अतिरिक्त कला में आध्यात्मिकता और लौकिकता का अद्भुत मिश्रण देखने को मिलता है। यद्यपि प्राचीन कला के उत्कृष्ट नमूने काफी हद तक नष्ट हो चुके हैं किंतु कुछ उपलब्ध कलाकृतियां अभी भी भारतीय संस्कृति की विरासत को संजोए हुए है। भारतीय समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन को अच्छी तरह से समझने में कला का अतिमहत्वपूर्ण योगदान है। निस्संदेह प्राचीनकला भारतीय संस्कृति की उत्तम अभिव्यक्ति है और इसके गौरवपूर्ण अतीत को जानने में महत्वपूर्ण है।

मुल शब्दः कलाकृतियां, अध्यात्मिकता, चित्रकला, लौकिकता,मूर्तिकला

प्राचीन भारत मे विभिन्न कलाओं का अत्यधिक विकास हुआ। यद्यपि पुरा पाषाण काल में कला विकसित नहीं थी तथापि मनुष्य के हृदय में कला का भाव पैदा हो गया था। मध्य पुरा पाषाण काल में मनुष्य ने गुफाओं पर चित्रकारी करनी शुरू कर दी थी जिसके उत्कृष्ट नमूने भीमबेटका, जो भोपाल के निकट स्थित प्रसिद्ध स्थान है कि गुफाओं में प्राप्त होते हैं। नव पाषाण काल के दौरान मानव जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। आग और पहिए के आविष्कारों से बर्तन बनाने की कला अपने विकास के चरम शिखर पर पहुंच गई। चाक की सहायता से टेराकोटा के सुंदर बर्तन बनाए जाते थे। इन बर्तनों को बाद मेंआग में पका करउनपरपशु पक्षियों, फूल पत्तियों की नक्काशी की जाती थी। खुदाई से प्राप्त बर्तनों और मूर्तियों पर विभिन्न चित्र बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त उस समय मनुष्य अपनी झोपड़ियां की गारे से बनी दीवारों पर भी चित्रकारी करता था।नव पाषाण काल में मनुष्य ने अपने मनोरंजन के लिए कुछ छोटे–छोटे वाद्य यंत्र भी बना लिए थे जिससे संगीत कला का आरंभ हुआ।

हड़प्पा कलाः हड़प्पा सभ्यता का विकास भारत के उत्तर पश्चिम में सिंधु नदी घाटी क्षेत्र के व्यापक भूभाग में हुआ। पुरातत्व विभाग को खुदाई से हड़प्पा सभ्यता से संबंधित विभिन्न स्थलों की जानकारी प्राप्त हुई है। यहां से प्राप्त विभिन्न वस्तुएं तत्कालीन लोगों के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश डालती है। निःसंदेह हड़प्पा सभ्यता के लोग एक उत्तम भवन निर्माण कला से परिचित थे और भवन एक निश्चित योजना के अनुसार बनाए जाते थे। मकान दो से तीन मंजिला, पक्की ईंटों के होते थे। कहीं–कहीं कच्ची ईंटों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। प्रत्येक मकान में एक खुला आंगन, रसोई घर, स्नानागार,कुए, तथा शौचालय की व्यवस्था होती थी।मकानों में दरवाजे, खिड़कियां व रोशनदानों का प्रबंध किया जाता था। हड़प्पा सभ्यता की नगर योजना की प्रमुख विशेषता नालियों का उत्तम प्रबंध था। नालियों को ईटों से इस प्रकार ढका जाता था कि सफाई के लिए आसानी से हटाया जा सके। इसके अतिरिक्त विशाल स्नानागार, सार्वजनिक भवन,अन्नागार आदि भवन निर्माण कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

हड़प्पा सभ्यता में भवन निर्माण कला के अतिरिक्त मूर्ति कला का भी अत्यधिक विकास देखने को मिला। खुदाई से प्राप्त विभिन्न मूर्तियों में टेराकोटा का विशेष प्रयोग किया गया है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त दाढ़ी वाले व्यक्ति की मूर्ति, जो सफेद पत्थर से बनी हुई है तत्कालीन शिल्पकारों के शारीरिक रचना को लेकर ज्ञान की अभिव्यक्ति करती है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त धातु की मूर्तियों में कांसे की नर्तकी की मूर्ति सर्वाधिक विख्यात है। विभिन्न स्थलों से प्राप्त मनके स्पष्ट करते है कि उस समय के लोग मनके बनाने में भी कुशल थे।
इसके अतिरिक्त इस सभ्यता के लोग मिट्टी के बर्तनों और मोहरों पर चित्र बनाते थे। हड़प्पाकालीन मोहरों पर अंकित चित्र तत्कालीन लोगों के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। इस सभ्यता के लोग फूल, पत्तियों,पशु, पक्षियों के अतिरिक्त मानव के चित्र भी निर्मित करते थे। इन बर्तनों को सुंदर पोलिश करके चमकदार बनाया जाता था। खुदाई से प्राप्त विभिन्न मिट्टी के बर्तनों से कलाकारों की तकनीकी निपुणता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता ळें

वैदिक कलाः वैदिक काल के दौरान विशाल भवनों का निर्माण किया गया था। शिल्प वेद में विभिन्न कलाओं विशेष रूप से भवन निर्माण कला के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान की गई है। यद्यपि ऋग्वैदिक कालीन मंदिरों में देवी देवताओं की मूर्तियों का अभाव था। किंतु उत्तर वैदिक काल में व्यापक पैमाने पर मंदिरों तथा विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ।
वैदिक कालीन लोग विभिन्न प्रकार के चित्र बनाते थे। मंदिरों की दीवारों, गुफाओं व सिक्कों परचित्र अंकित मिलते हैं। वेदों में दिए गए मन्त्रों को यज्ञ के समय पुरोहित सुर ताल के साथ गाते थे जिससे संगीत कला के विकास का भी पता चलता हैं। इसके अतिरिक्त गंधर्ववेद में भी संगीत से संबंधित विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है। वैदिक सभ्यता के लोग नृत्य और संगीत के बहुत ही शौकीन थे। ये अपने प्रमुख वाद्य यंत्रों जैसे ढोल, वीणा और मृदंग को बजाकर अपना मनोरंजन करते थे। इस दौरान नाट्यकला का भी विकास हुआ।

मौर्य कलाः मौर्य साम्राज्य के उत्कर्ष काल के दौरान भारतीय कला और वास्तुकला में महत्वपूर्ण परिवर्तन आए। स्तंभों, विहारों व स्तूपों का निर्माण, पॉलिश किए हुए बलुआ पत्थर का व्यापक उपयोग एक क्रांतिकारी बदलाव था। फलस्वरूप पोलिश करने की कला, इंजीनियरिंग कला, मूर्ति कला तथा आभूषण कला में भी उल्लेखनीय विकास हुआ। आयताकार इमारतें, जिनके शीर्ष पर अक्सर शानदार पशु मूर्तियां होती थीं, शिलालेखों के रूप में शाही संचार का एक नया माध्यम सिद्ध हुई। गंगा और सोन नदियों के संगम पर स्थित पाटलिपुत्र सुरक्षा और सुंदरता के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था। इसके अतिरिक्त श्रीनगर और ललितापाटन नामक नगरों की भी स्थापना हुई, यहां विभिन्न विहारों का निर्माण भी करवाया गया था। विदेशी यात्रियों ने अपने वृत्तांतो में मौर्य कालीन भवनों की भूरि भूरि प्रशंसा की है।

सम्राट अशोक द्वारा बौद्ध धर्म का प्रचार प्रसार करने के लिए अपने राज्य में विभिन्न स्तूपों का निर्माण करवाया गया था। अशोक द्वारा निर्मित स्तूपों में सांची व भरहुत के स्तूपों को महत्वपूर्ण माना जाता है। इन स्तूपों के तोरणद्वारों पर मनुष्यों, पशु, पक्षियों तथा विभिन्न देवी देवताओं के चित्र अंकित मिलते हैं।

अशोक कालीन मौर्य कला सफेद–भूरे बलुआ पत्थर के स्तंभों में सबसे अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। ये स्तंभ बुद्ध के जीवन से जुड़े किसी पवित्र स्थान को चिह्नित करने के लिए बनाए गए थे। इनमें से कई स्तंभों पर अशोक की प्रसिद्ध घोषणाएँ अंकित हैं। अपने सबसे उन्नत रूप में ये स्तंभ ऊँचे, संकरे विशालकाय पत्थरों से बने हैं। अधिकतर स्तंभों की लंबाई 40 फीट है। इन्हें एक ही पत्थर के टुकड़े से निर्मित किया जाता था। सारनाथ, लौरिया नंदनगढ़,लोरिया अराराज, रामपुरवा, सांची तथा प्रयाग में सम्राट अशोक के स्तंभ मिलते हैं। यह स्तंभ भारतीय तकनीकी कुशलता व उत्तम इंजीनियरिंग कला का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मौर्यकालीन कारीगरों की कलाकृतियों ने शाही महलों और धार्मिक स्मारकों को सुशोभित किया; साथ ही आम जनता की सांस्कृतिक समृद्धि में भी योगदान दिया। प्राचीन भारतीय सभ्यता की विविध प्रेरणाएँ और महत्वाकांक्षाएँ मौर्य काल की कला और वास्तुकला में पाए जाने वाले आविष्कार, नवाचार और सांस्कृतिक संश्लेषण के जीवंत ताने–बाने में परिलक्षित होती हैं। इस काल में विहारों,बौद्ध भिक्षुओं द्वारा आवासीय और शैक्षिक स्थानों के रूप में उपयोग किए जाने वाले मठ परिसरों का भी विकास हुआ। मौर्य काल में टेराकोटा, हाथीदांत की नक्काशी और मिट्टी के बर्तन जैसी कलात्मक तकनीकें विकसित हुईं, जो उस समय प्रचलित कलात्मक अभिव्यक्तियों की विविधता को दर्शाती हैं। निःसंदेह मौर्य कला और वास्तुकला ने मौर्य शक्ति के विकास और पूरे साम्राज्य में बौद्ध धर्म के प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पत्थर से निर्मित मौर्य कालीन विभिन्न कलाकृतियां आज भी देखी जा सकती हैं।

कुषाण कलाः मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात भारत की राजनीतिक एकता समाप्त हो गई। इस राजनीतिक अस्थिरता ने कुछ समय के लिए कला के विकास को बाधित कर दिया। विदेशियों ने भारत के विभिन्न भागों पर अधिकार कर अपने राजवंश स्थापित कर लिए जिनमें प्रमुख थे,कुषाण। कुषाण शासनकला और वास्तुकला के क्षेत्र में किए गए योगदानों के लिए उल्लेखनीय था। कुषाण शासक कला के संरक्षक थे इसलिए उन्होंने दरबारी कलाकारों को स्वयं और अपने पूर्वजों तथा अन्य गणमान्य व्यक्तियों की मूर्तियाँ बनाने के लिए प्रोत्साहित किया और साथ ही धार्मिक क्षेत्र में विभिन्न कला कृतियों के निर्माण में योगदान देने के लिए भी प्रेरित किया।वे बुद्ध के पूर्व जन्मों से जुड़ी जातक कथाओं, ज्ञान प्राप्ति की प्रक्रिया में बोधिसत्वों और ब्रह्मा, इंद्र और हरिति सहित बौद्ध धर्म से जुड़े कई अन्य देवताओं को चित्रित करने में रुचि रखते थे। उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र, जिसे लोकप्रिय रूप से गांधार के नाम से जाना जाता है, के मूर्तिकारों का मुख्यविषय बौद्ध धर्म था, वहीं कुषाण साम्राज्य के पूर्वी भाग में स्वदेशी परंपराओं पर आधारित एक अलग कलात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलता था। यह संभव है कि विदेशी कलाकारों ने अपने संरक्षकों के कहने पर उत्तर–पश्चिम में अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया हो। लेकिन यह भी संभव है कि कुछ कृतियाँ महात्मा बुद्ध के धर्म को अपनाने के परिणामस्वरूप आंतरिक प्रेरणा का परिणाम थीं। गांधार कला पर यूनानियों का प्रभाव स्पष्ट देखा गया। इस कला के विचार अर्थात भाव भारतीय थे किंतु शैली यूनानी थी। कुषाण काल के दौरान मथुरा कला का भी विकास हुआ जिसमें महात्मा बुद्ध के अतिरिक्त बोधिसत्वों, हिंदू देवी देवताओं की मूर्तियां भी लाल रंग के पत्थर से निर्मित की गई। वास्तु कला की दृष्टि से विभिन्न विहारों तथा स्तूपों का निर्माण करवाया गया। कश्मीर में कनिष्कपुर, उत्तर पश्चिम में तक्षशिला शहर बसाया गया। इसके अतिरिक्त सातवाहन काल के दौरान भी सुंदर स्तूपों,विहारों तथा चौत्यों का निर्माण किया गया था।

गुप्त कलाः प्राचीन भारत में कला एवं वास्तुकला के विकास की दृष्टि से गुप्त काल का महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल में कला के विभिन्न क्षेत्रों में उन्नति हुई। गुप्त शासक हिंदू धर्म में विश्वास रखते थे। फलस्वरुप गुप्त शासको द्वारा हिंदू मंदिरों का निर्माण करवाया गया। मंदिरों की विशेषता गर्भ ग्रह के द्वारों को अलंकृत करना था। भूमरा का शिव मंदिर, तिगवा का विष्णु मंदिर, देवगढ़ का दशावतार मंदिर तथा भीतरी गांव के मंदिर कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। गुप्त काल में विभिन्न हिंदू देवी देवताओं के अतिरिक्त जैन तीर्थंकरों तथा महात्मा बुद्ध की मूर्तियां पत्थर व धातु से बनाई गई। इतिहासकारों के अनुसार इन मूर्तियों को देखने से प्रतीत होता है कि कलाकारों ने उनमें जैसे प्राण डाल दिए हैं अर्थात मूर्तियां बहुत ही सजीव दिखाई देती हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि गुप्त काल में चित्रकला में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई। अजंता व एलोरा की गुफाओं में सुंदर चित्र बनाए गए । इनमें पशु–पक्षियों, वृक्षों, फलों, फूलों के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध के जीवन से संबंधित चित्र भी बनाए गए हैं। गुप्त शासको ने संगीत कला को भी अपना संरक्षण प्रदान किया था। समुद्रगुप्त स्वंय एक महान संगीतज्ञ था जो वीणा बजाने में बहुत ही कुशल था। मुद्रण कला के विकास के कारण गुप्त शासको द्वारा विभिन्न प्रकार के सिक्के भी निर्मित करवाए गए। इन सिक्कों पर शासकों और रानियां के चित्र चित्रित है।

इसके अतिरिक्त सिंह विष्णु वंश के पल्लवों ने द्रविड़ कला और वास्तुकला में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। पल्लव राजा महेंद्र वर्मन प्रथम को त्रिमूर्ति के लिए चट्टान को काटकर गुफा मंदिर बनवाने का श्रेय दिया जाता है ममल्लापुरम में गुफा मंदिरों और चट्टानों पर अंकित कलाकृतियों के अतिरिक्त एक ही पत्थर से बने मंदिरों का समूह कला के उत्कृष्ट नमूनों में से है जिन्हें आमतौर पर रथ कहा जाता है। द्रौपदी रथ देवी दुर्गा को समर्पित मंदिर है जिसका शिखर वर्गाकार और घुमावदार है अर्जुन रथ भी वर्गाकार प्रकार का है जिसमें दो तल और अष्टकोणीय घंटी के आकार का शिखर है।धर्मराज, भीम,नकुल और सहदेव रथ भी कला के अनमोल नमूने हैं।

ऐतिहासिक स्रोतों के अनुसार सातवीं शताब्दी से ही पत्थर के संरचनात्मक मंदिरों का निर्माण प्रारंभ हो गया था। यद्यपि प्राचीन काल से दक्षिण भारत में ईंटों के मंदिरों के ठोस प्रमाण साहित्य से प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त चार स्तंभ ऐसे हैं जिन पर महेंद्र वर्मन प्रथम की उपाधियाँ उकेरी गई हैं और जो महेंद्र वर्मन प्रथम के समय बनाए गए मंदिर का हिस्सा है। नंदी वर्मन द्वितीय के शासनकाल में कांची में वैकुंठ पेरूमल विष्णु मंदिर का निर्माण

महत्वपूर्ण है जिसके तीन मंजिला विमान है। इसके अतिरिक्त मुक्तेश्वर, मातंगेश्वर और त्रिपुरांतकेश्रूवर जैसे मंदिर भी बनाए गए थे जो कि अपेक्षाकृत छोटे आकार के हैं।

चोलकलारूपल्लवों के गौरवमयी शासन के पश्चात तंजावुर के विजयालय वंश के चोलों का शासन अत्यंत गौरवशाली रहा। चोल सत्ता का उदय और विस्तार नौवीं शताब्दी में विजयालय के अधीन शुरू हुआ। उन्होंने चार शताब्दियों तक अपने राजनीतिक प्रभुत्व और व्यापार को इतना विस्तृत किया जितना दक्षिण भारत के अन्य किसी शक्ति ने नहीं किया था। उत्तर में गंगा क्षेत्र से लेकर दक्षिण में लंका द्वीप तक और पश्चिमी तट पर क्रगानोर से लेकर पूर्व में मलय प्रायद्वीप के कदारम और दक्षिणी पूर्वी एशिया के आसपास के द्वीपों तक फैला हुआ था। उनके शासनकाल के दौरान निर्मित मंदिरों और उत्कृष्ट कलाकृतियों ने इतिहास में चोल शासकों की ख्याति को अमर बना दिया। विजयालय द्वारा निर्मित और प्रतिष्ठित एकमात्र ज्ञात मंदिर तंजावुर में स्थित निशुम्भसूदनी मंदिर है जिसकी जानकारी राजेंद्र चोल के तिरुवलगाडु अभिलेखों से मिलती है। नौवी शताब्दी तक शैव धर्म चोल साम्राज्य का प्रमुख धर्म बन गया था। परांतक प्रथम के बाद के चोल शासकों ने भी इसे अपना लिया। राजराज प्रथम तथा राजेंद्र प्रथम के समय में इसे और अधिक सुदृढ़ बनाया गया।

चोल काल में द्रविड़ वास्तुकला चरमोत्कर्ष पर पहुंची। साथ ही मूर्तिकला, चित्रकला और कांस्य ढलाई के क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय स्तर की उपलब्धियां हासिल की गई। वास्तुकला, मूर्तिकला और चित्रकला मुख्य रूप से धर्म के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए थीं। मंदिर संगीत और ललित कलाओं का केंद्र थे। संगीत और नृत्य मुख्य रूप से भक्तिमय थे। इनका उद्देश्य ईश्वर की महिमा करना और मनुष्य का उत्थान करना था। मंदिर सबसे उत्तम और टिकाऊ स्थापत्य शैली थे।नागर तथा द्रविड़ शैली में विभिन्न मंदिरों तथा भवनों का निर्माण किया गया। बृहदेश्वरमंदिर (तंजावुर) राजराज चोल प्रथम द्वारा निर्मित द्रविड़ शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह मंदिर भगवान शिव को समर्पित है। शिव को लिंग के रूप में राजराज द्वारा स्थापित किया गया था।वृहदेश्वर मंदिर में चोल चित्रकला के उत्कृष्ट नमूने मिलते हैं। तंजावुर चित्रकला में बारीकी और प्राकृतिक रंगों का इस्तेमाल किया गया है।

गंगईकोंड चोलपुरमराजेंद्र चोल प्रथम द्वारा अपनी विजय के उपलक्ष्य में निर्मित मंदिर अपनी उत्कृष्ट मूर्तियों के लिए प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त कम्पाहेश्वर मंदिर (तिरुभुवनम) अपने ऊंचे शिखरों और समृद्ध मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध है। विजयालय चोलेश्वरम (नार्थमलाई) 9वीं शताब्दी में निर्मित सबसे प्राचीन चोल मंदिरों में एक है। कहा जाता है कि सर्वश्रेष्ठ कलाकारों को भक्तों और तीर्थयात्रियों के लिए मंदिरों की दीवारों पर मूर्तियां बनाने और चित्रकारी करने के लिए नियुक्त किया जाता था। मंदिर उत्सवों में भारी भीड़ उमड़ती थी। इन उत्सवों के दौरान मेले लगते थे तथा नाट्य प्रदर्शन, धार्मिक और नैतिक प्रवचन, कलाबाजी और अन्य मनोरंजन प्रस्तुत किए जाते थे।

इसके अतिरिक्त राजपूत काल में भी विभिन्न कलाओं का विकास देखने को मिला। वास्तु कला की दृष्टि से चित्तौड़, रणथंभौर, कालिंजर, जोधपुर आदि के दुर्गऔर जयपुर तथा उदयपुर के महल एवं दुर्ग कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। एलोरा का कैलाश नाथ मंदिर, अजंता का गुहा मंदिर ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय है।

निष्कर्ष

अतः स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में विभिन्न कलाओं का अत्यधिक विकास हुआ। भारतीय कलाकारों की कुशलता और उनका तकनीकी ज्ञान विभिन्न कलाकृतियों के माध्यम से प्रदर्शित होता है। कला के अद्भुत नमूने भारत के गौरवपूर्ण अतीत को संजोए हुए हैं जो आने वाली पीढ़ियों को भारतीय संस्कृति की महानता से अवगत कराते हैं।

संदर्भ सूची

1. भट्टाचार्य, अरुण, हिस्ट्री ऑफ एनसिएंट इंडिया, न्यू दिल्ली, 1979
2. बाशम,ए एल, द वंडर देट वास इंडिया, कोलकाता, 1990
3. त्रिपाठी, आरएस, हिस्ट्री ऑफ़ एनसिएंट इंडिया,न्यू दिल्ली, 1987
4. लाल, के बी, द इंडस सिविलाइजेशन,बॉम्बे, 1989
5. मजूमदार,आर सी,एनसिएंट इंडिया, दिल्ली, 1991
6. सुब्रमण्यम,एस आर बाला, अर्ली चोल आर्ट, पार्ट वन, एशिया पब्लिशर्स, बॉम्बे
7. चौधरी, के सी राय,सोशल कल्चरल एंड इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, दिल्ली, 1989
8. साह, बी पी तथा बेहरा के एस,एनसिएंट हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया, दिल्ली, 1998
9. रजंन, रे निहार, मौर्य एंड शुगं आर्ट, कोलकाता, 1945
10. पांडेय, बी के, प्राचीन भारतीय कला वास्तु एवं पुरातत्व, शारदा प्रकाशन, इलाहाबाद
11. ग्रोवर, सतीश, द आर्किटेक्चर ऑफ़ इंडिया बुद्धिस्ट एंड हिंदू, उत्तर प्रदेश, 1930
12. अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी, 1966